



## साहित्यिक अनुसंधान और कलापक्ष



### डॉ. विजय शिंदे

देवगिरी महाविद्यालय, औरंगाबाद - 431005 (महाराष्ट्र).

ब्लॉग - [साहित्य और समीक्षा डॉ. विजय शिंदे](#)

### Research Paper :

1.

साहित्य की दुनिया बहुत बड़ी है। इस दुनिया में साहित्यकार और समीक्षकों की कतार भी बहुत लंबी है। विभिन्न भाषाओं को लेकर आंकना शुरू करें तो किसी भी लिखने वाले के अस्तित्व की बात बहुत ही छोटी लगती है, चाहे वह लेखक हो या समीक्षक। हिंदी भाषा का विचार करें तो विश्व स्तर पर उसका दृश्य स्वरूप धुंधलाते आकाश-सा लगता है और उसके भीतर लेखक-समीक्षकों के नाम टिम-टिमाते तारे-से नजर आते हैं। फिर भी केवल और केवल हिंदी साहित्य और भाषा के छोटे-बड़े, हैं-नहीं हैं ऐसों को अगर गिनना शुरू करें तो उसकी दुनिया छोटी नहीं है, बहुत बड़ी है। इस हिंदी दुनिया का भला करने के लिए हर एक व्यक्ति ने सैनिक बन योगदान दिया है। लेखक और समीक्षक उनमें से एक सैनिक है। उन्हें हम चाहे तो सैनिक कह सकते हैं, सरदार कह सकते हैं, सेनापति कह सकते हैं.... या और बहुत कुछ। लेकिन पत्थर की सफेद लकीर

के समान यह सच है कि हिंदी साहित्य को बनाने का काम इन दोनों ने किया है। इनमें हम कौन हैं? मैं कौन हूँ? हमारी भूमिकाएं क्या हैं? हमारा दायित्व क्या है? इसके पहले हमने कुछ सही किया? आज जिन रास्तों पर चल रहे हैं, जिन रास्तों पर चलना चाहते हैं उसके अनुकूल, भले के लिए कुछ कदम उठाएं? या हमारे मन में कुछ अलग मंशाएं हैं?... या हम शेर की खाल ओढ़े सियार बन केवल डिंगे हांकने में लगे हैं? हमें नहीं लगता कि विश्वविद्यालयों और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की कृपा से चल रहे देश में जितने भी साहित्यिक अनुसंधान के केंद्र हैं वहां पर कलापक्षीय अनुसंधान की वाट लगी है? कलापक्षीय आयामों पर न के बराबर अनुसंधान हो रहा है। प्रतिशत के नाते आंकना चाहे तो 99.99 % विश्वविद्यालयीन साहित्यिक अनुसंधान कार्य कलापक्ष को छोड़कर चल रहा है। ऐसा होना साहित्य के लिए कोई खतरा निर्माण नहीं कर रहा है पर अनुसंधात्मक गतिविधियों का खात्मा जरूर कर रहा है। साहित्यिक दुनिया को समीक्षक आधार दे रहे हैं। समीक्षक साहित्यिक कृतियों का सही रूप में कलापक्षीय मूल्यांकन कर उसकी खुबियों और कमियों को आंक रहे हैं, अर्थात् भला कर रहे हैं। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि शोधार्थी और शोध-निर्देशक क्या कर रहे हैं?

2.

लेखक के पास वह अनुभव है, ज्ञान है जो आस-पास के विषय को उठाकर कलात्मक कौशल के आधार पर उसे एकाध विधा में ढाले। उसकी कृति सामाजिक सच्चाई का बेबाकी से कलात्मक रूप में बयान करती है। उस कलाकार की कलाकारिता है कि उसे रूपांतरित करता है। भाव, भाषा और शैली के माध्यम से वह एक ऐसी अद्भुत रचना का निर्माण करता है, जो सबको अवाक करती है। उसमें कम-ज्यादा न सही बॅलंस होना चाहिए। लेखक जो लिखता है, सोचता है वह सबके दिमाग में होता है। उसका देखा सारी दुनिया देखती है। लेकिन सृजनकर्ता-लेखक ही वह लिखता है; सारी दुनिया उसे नहीं लिख पाती। अगर लेखक की नजर वह देखकर, उसे पकड़कर शब्दों में करीने से सजाने का कार्य करती है तो उस कलात्मक कृति के कलात्मक पहलुओं का परीक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण है। पत्थर-शिल्पी-मूर्ति के उदाहरण से इसे बखुबी स्पष्ट किया जा सकता है। आम पत्थर को सभी देखते हैं पर शिल्पी की नजर उस पत्थर के अनावश्यक कोनों को हटाकर मूर्ति को साकार रूप देती है। शिल्पी की कलाकारिता है, कोई दो राय नहीं। अंततः शिल्पी हट जाता है। दर्शक और मूर्ति एक-दूसरे के सामने खड़े होते हैं और दर्शक अपनी आंखों से मूर्ति का परीक्षण करता है। अच्छी-बूरी। सुंदर-खूबसूरत-अतिसुंदर। यह राय बनाते वक्त उसके कुछ मानक होते हैं और इन्हीं मानकों के आधार पर उसका मूल्यांकन चलता है। ऐसे समय में उसकी नजर केवल और केवल मूर्ति की कलाकारिता-कलापक्ष पर होती है, जिससे उसका सुंदर होना और न होना तय होता है। वहीं दर्शक साहित्यिक दुनिया में जब शोधार्थी बन जाता है तब उसकी नजर कलापक्ष के नाते कमजोर क्यों पड़ जाती है?

उपर्युक्त विचारों को और विस्तार से तथा साफ शब्दों में स्पष्ट किया जा सकता है। हिंदी साहित्य के मध्यकाल तथा भक्ति को लेकर कई अनुसंधान कार्य पूर्ण हो चुके हैं। कई विद्वतजनों ने कबीर और उनके द्वारा लिखी रचनाओं को अपने अनुसंधान का विषय बनाया है। कई भाषाओं में अन्य संतों के साथ कबीर

का तुलनात्मक अध्ययन भी किया है। कबीर की रचनाओं को पढ़ते हैं, उनका मूल्यांकन करते हैं तब सतही तौर पर कहते हैं कि कबीर ने भाषा और कलापक्ष के बंधन माने नहीं हैं। सारे बंधनों को तोड़कर उन्होंने अपनी बात को रखा है। कबीर की सच्ची वाणी ने कलापक्ष को एहमीयत नहीं दी, नकार के साथ कलापक्षीय ढंग से मुखौं पर चोट की। हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने कबीर के लिए कहा भी 'अगर बना तो ठीक नहीं तो दरेरा देकर।' मतलब क्या है? नकार में भी एक कला हो और है। तथा उस नकार की कला को कला के रूप में स्थापित करने का जिगरा हो, बातों में दम-खम हो। हजारीप्रसाद द्विवेदी जी के बाद कई समीक्षकों ने कबीर की हड्डी को चबाया परंतु जुगाली के बाद जो कलापक्षीय विश्लेषण की डकार द्विवेदी जी ने दी वह किसी ने नहीं दी।

### 3.

आज हिंदी साहित्य जिन स्थितियों में हैं वह सालों की मेहनत और परिवर्तनों का नतीजा है। हिंदी साहित्य के आरंभ की और वर्तमानकाल की रचनाओं में जमीन-आसमान का अंतर है। भाव, विषय, विचार, चिंतन और कलापक्ष के नाते अंतर आ चुका है। आज साहित्य की विधाओं का वैविध्य, उसके निर्मिति के सूक्ष्म अंतर एक रचना को दूसरी रचना से अलग कर देते हैं। प्रत्येक रचनाकार की अपनी खुबियां होती हैं; उस रचनाकार की रचनाएं बदलेगी, विषय बदलेंगे पर उसकी वह स्थापित खुबी नहीं बदलेगी। उसकी जिस कला और पक्ष में महारत है वह प्रत्येक रचना में उतरती रहेगी। इन्हें पकड़ना उसका सूक्ष्म विवेचन करना, कलापक्षीय दृष्टिकोणों से उसकी कृतियों को आंकना अत्यंत जरूरी बनता है। जैसे साहित्य लेखन का एक कलापक्षीय ढांचा है वैसे समीक्षा और अनुसंधान का भी है। हम समीक्षा और अनुसंधान के दौरान उस कलापक्षीय ढांचे के दायरे में रहकर अपना शोधकार्य करते हैं परंतु शोध विषय का चुनाव करते वक्त बड़े आराम के साथ कलापक्षीय नजरीए को नजरंदाज करते हैं। इसे पलायनवादिता कहे, शोधकार्य पूरा करने की जल्दबाजी कहे या अपना कलापक्षीय अज्ञान कहे। जो भी हो यह अपराध हम कर लेते हैं।

अनुसंधान कार्य मेहनत, चिंतन और लगन से पूर्ण होता है। एक बार मन में गांठ बांध ली कि इसे करना ही है तो उसे पूरा किया जा सकता है। बस इस पर गंभीरता से सोचने की और अंजाम तक पहुंचाने की आवश्यकता है। जब तक पानी गले तक नहीं आता तब तक हम हाथ-पैर नहीं चलाते वैसे ही साहित्यिक अनुसंधान कार्य का हो रहा है। भावपक्ष और विषयपक्ष में साहित्यिक अनुसंधान कार्य इतना उलझ चुका है कि उसके दूसरे पक्ष को देखने की कोशिश भी नहीं कर रहा है। इससे साहित्यिक अनुसंधान केंद्रों पर प्रश्नचिह्न निर्माण हो रहा है। अतः शोधार्थी की इस विषय में रुचि दिखी कि उसे कलापक्षीय अनुसंधान के लिए प्रोत्साहन देने का समय आ चुका है।

### 4.

जहां साहित्य है वहां भावपक्ष के साथ कलापक्ष बड़ी सहजता के साथ आ जाता है। किसी भी साहित्यिक कृति का निर्माण अपने आप में अप्रतिम कला की निर्मिति ही है। साहित्य की कलात्मक दृष्टि उसको आभूषित करती है, उसको शोभायमान बना लेती है। इसके साथ ही सौंदर्यात्मकता, रसात्मकता और

आनंदानुभूति से प्रत्येक दर्शक-पाठक को उस कृति में विवेचित विषय का गहराई में जाकर स्पर्श कराती है। साधारण बात कलात्मकता के कारण जनता के हृदय को छूने की क्षमता पाती है। रचना का यह प्रभाव लंबे समय तक बना रहता है। कला ही जीवन है। वह साहित्य में उतरकर सबके जीवन में विविध रंग भरने का काम करती है। कलापक्ष का संबंध साहित्य के भावपक्ष से है, उसके रख-रखाव से है। साहित्य को मर्मस्पर्शी बनाने में सार्थक ध्वनि समूह का बड़ा महत्व है। विषय को ताकतवर बनाने में शब्द योजना की अहं भूमिका होती है। शब्दों का चुनाव साहित्य के बाहरी रूप को आकर्षक-खूबसूरत बनाता है और यहीं बाहरी सौंदर्य आंतरिक सौंदर्य को मीठा भी बनाता है। शब्द-शक्ति, शब्द-गुण, अलंकार, रस, छंद, लय, तुक, संगीत, प्रतीक, बिंब... साहित्य को गति और माधुर्य प्रदान करते हैं। कलापक्ष के यहीं आयाम मनुष्य की आत्मा को झंकृत कर अलौकिक आनंद की प्राप्ति, ब्रह्मानंद सहोदर की प्राप्ति करवाते हैं। साहित्यिक अनुसंधान करते वक्त हम इसे अनदेखा कर विषयपक्ष में रममान होते हैं। लेखक द्वारा विवेचित विषय को दुबारा विवेचित करते हैं, शोधकर्ता का चष्मा पहनकर, चिंतक बनकर। अतः जरूरी है जिसके कारण ब्रह्मानंद की प्राप्ति हो रही है उस पर गौर करते हुए साहित्यिक अनुसंधान में कलापक्षीय आयामों पर ध्यान केंद्रित करने की।

साहित्य का कलापक्ष मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है। एक शब्द शिल्प और अनुभूति सौंदर्य जिसमें रस, छंद, अलंकार योजना आती है; दूसरा अर्थ और भाव सौंदर्य जिसके तहत साहित्य के गुण जैसे माधुर्य, ओज, प्रसाद आदि का समावेश होता है और तीसरा अर्थ प्रतीति कराने वाली कथ्य शक्तियां अभिधा, लक्षणा और व्यंजना आदि को अनुसंधान का विषय बनाया जा सकता है।

कलापक्षीय अनुसंधान के तहत साहित्य में अलंकार योजना, काव्य के गुण, कलापक्ष, सौंदर्यमयता, रसात्मकता, शिल्प सौंदर्य, शब्द सौंदर्य, भाव सौंदर्य (रस, छंद, अलंकार), अर्थ सौंदर्य की उत्पत्ति (अभिधा, लक्षणा, व्यंजना), छंद और उनका रचना विधान, गुण और शब्दशक्तियां, लय और गति, प्रतीकात्मकता, बिंबात्मकता, कल्पनात्मकता, काव्यशास्त्रीय दृष्टि, सौंदर्य के तत्त्व... आदि विषयों को चुना जा सकता है। साहित्य लेखन के नए प्रवाहों में नए सौंदर्य-स्थल भी मौजूद हैं, अतः उनको अनुसंधान के माध्यम से केंद्र में लाया जाए तो बेहतर होगा।

5.

यह निबंध, लेख या आलेख विश्वविद्यालय के अनुसंधान की स्थितियों पर प्रकाश डालता है; जो एक व्यवसाय के तहत उत्पादन करते जा रहा है। अंदर-बाहर को जानता हूँ; अतः लेखन पद्धतियों को जैसे स्वीकारता हूँ, वैसे नकारता भी हूँ। चिंतक, समीक्षक अपनी बातों को डंके की चोट पर रखता है और उन मतों पर बना भी रहता है। उसके लिए किसी दूसरे व्यक्ति के 'संदर्भों' की आवश्यकता नहीं। असल समीक्षा, विवेचना वहीं है जो अपने-आप में परिपूर्ण हो। अपनी कमजोर बातों को पुष्टि प्रदान करने के लिए दूसरों के संदर्भ उठाना अपनी बात की कायमता पर संदेह निर्माण करना है। अतः इस आलेख में 'रिसर्च पेपर' के इथिक्स तोड़ रहा हूँ। इथिक्स के तहत काम करने का समय गुजर चुका है, तो क्यों न खुलकर बेबाकी से लिखा जाए। शोध आलेख की परिधि के बाहर का शोध शायद ही भलाई की बात करे। भूले-बिसरे

शोधार्थी अनुसंधात्मक तकनीकों के पश्चात् उपाधियां पाकर साहित्य के कलापक्ष को अनुसंधान का विषय बनाकर कन्फेशन करे। कन्फेशन तभी पूरा होता है जब उसके स्वीकृति उपरांत दुबारा उसी गलती को न दोहराए। अर्थात् 'उपाधि अनुसंधान' के दौरान कलापक्ष पर कोई गौर नहीं किया कोई बात नहीं परंतु उपाधि प्राप्ति के पश्चात् अपने-आपको किसी भी एक विषय में माहिर बनाना जरूरी है। उसमें 10 % भी कलापक्ष पर मेहनत करने लगे तो साहित्य और अनुसंधान का भला होगा। अनुसंधान का आरंभ ही अगर कलापक्ष से जुड़कर हो रहा है या विषय पक्ष के समकक्ष कलापक्ष के साथ हो रहा है तो सोने पर सुहागा माना जाएगा।